प्राक्कथन

लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पहले, चीन में जब चाऊ राजाओं का राज्य था, लाओत्से नाम का एक दार्शनिक राजकीय सेवा में नियुक्त था। उसने काफी करीब से राजनैतिक, सामाजिक व वैयक्तिक व्यवहार एवं उनके परिणाम देखे थे। वह समय भी आज की सी अराजकता का था। चारों ओर फैली हर क्षेत्र की अराजकता से एक दार्शनिक व्यक्ति का मन उध्देलित हो उठता था। पर, वह कुछ कर नहीं पाता था, क्योंकि उसके लिये हाथ में पूर्ण शक्ति होना अनिवार्य था। वह राजा तो नहीं था। उसने तब एक दिन , राजकीय सेवा से अवकाश ले लिया और वन की ओर निकल पडा। नगर की सीमा पर नगर रक्षक चिन सी ने उसे रोका और मार्ग दर्शन के लिये अपने अनुभवों को लिपिबध्द करने को कहा। लाओत्सु एक भगोड़ा दार्शनिक तो न था। चाहता तो वह भी था कि राष्ट्र का विकास हो , इसलिये उसने चिन सी की प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुल इक्यासी सूत्रों में उसने अपनी अनुभव देशना लिख दी।

लाओत्सु की देशना ठाली बैठे मन का आलोड़न मात्र नहीं है, न हि थोथी दार्शनिकता ही है उसमें। वह तो अत्यंत व्यवहारिक है। भौतिक ज़मीन पर ही हैं उसके पांव। एकदम तर्क सम्मत विज्ञान की बातें हैं, वहां। विज्ञान की मूल बात है कार्य कारण का संबंध। लाओत्सु भी जड़ चेतन जगत में इस कार्य कारण संबंध को ही बतलाते हैं। वे कहीं यह नहीं कहते, ऐसा करो, वैसा न करो। वे तो कहते हैं, प्रकृति को गौर से देखो। आग लगती है, तभी धुआँ उठता है, गर्मी होती है तभी बारिश आती है, फिर सर्दी आदि। शक्ति दिखाई तो प्रतिरोध पैदा होगा, दबाव डाला तो विस्फोट होगा, प्रदर्शन किया तो

ईर्ष्या – द्वेष फैलैगा, संचय किया तो चोरी होगी आदि आदि।

पूर्व का पूरा दर्शन इन इक्यासी सूत्रों में समाहित हो गया है। सादा जीवन उच्च विचार की ओर, एवं फिर सही कर्म की ओर, ले जाता है। यदि वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में शान्ति, संतोष व आनंद पाना हो तो प्राकृतिक सादगी की ओर लौटना ही होगा। राजनितिक क्षेत्र शॉंति प्रिय लोगों के लिये दुरूह जान पड़ता है, परंतु यदि कुछ मूल बातों का ध्यान रखें तो वह भी बड़ा आसान हो जाता है। वे मूल बातें जग व्यवहार से तो संबंध रखती ही हैं, किंतु उनके मूल में भी केन्द्र की ओर लौटना यानि कि मूल स्वभाव पर लौटने की प्रमुखता है। कहना न होगा - वैयक्तिक जीवन के सभी पक्षों के समावेश से यह देशना समझने में कभी-कभी मुश्किल भी हो जाती है।पर, हम ही व्यक्ति को परिवार, समाज, देश, दुनियां में बांटकर देखने के आदी हो गये हैं।

लाओत्से ने "अनळहक़" की, "सोहम" की घोषणा तो नहीं की, फिर भी उस स्थिति पर पहुंचे हुए इस संत ने कुछ स्थानों पर सहज ही, बिना ज़ोर दिये, ऐसा ही कुछ कह दिया है – सूत्र नंबर ६७; ७० आदि में। पर, फिर भी वे 'उस एक' को या ' स्व ' को जानने मात्र को ही नहीं कहते, जैसा कि अन्य शास्त्र कहते हैं। यहॉं तो उन्होंने संसार में प्रकृति से विलगता मानी ही नहीं। सब कुछ वही है, खाली हो जाओ, नमित रहो, वो मिला ही हुआ है। इसके लिये दुनियॉं से कटना ज़रूरी नहीं है, बल्कि जग व्यवहार ही आवश्यक है। केवल व्यक्ति को ही नहीं, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व सबको सही परिपेक्ष्य मिले, सबमें व्यवस्था हो, इसी पर उनका ज़ोर है। तभी उदासीन बन कर रहने को नहीं, चौकन्ने होकर जीने को कहते हैं। बच्चों में सही भाव-विचार, व्यवहार की स्थापना करने को कहते हैं,

ताकि बिना अधिक मेहनत, ज़ोर-ज़बर्दस्ती के उनकी जीवन प्रणाली ही वैसी हो जाय। तब परिवार, समाज, देश व विश्व वैसे ही हो सकेंगे। लगता है, जैसे कृष्ण की गीता के, कर्मयोग के सिध्दान्त का ही पुन: वर्णन किया है।

पश्चिम के विज्ञान और पूर्व की कला का, तर्क व अनुभूति का, सकारात्मकता और नकारात्मकता का, चेंग व चिन का, दायें व बायें मस्तिष्क का, अंतर व बाह्य सृष्टि का अभूतपूर्व सम्मिश्रण, लाओत्से के इन सूत्रों में हुआ है, अत: ये पूर्ण हैं, आधे-अधूरे नहीं। व्यक्ति जैसा है-वह दोनों भौतिक व अभौतिक तत्वों के मिश्रण से ही बना है। अत: उसकी पूर्णता भी,कार्यों की पूर्णता भी दोनों के मिलने से ही संभव होगी। लाओत्से का ज़ोर इसी बात पर है। उन्होंने न तो भौतिक को नकारा है, न आत्मिक को ही कोने में ढ़केल दिया है। तभी यह अत्यंत अपना सा, वास्तविक लगता है। हर व्यक्ति इन दोनों आयामों को कम-ज़्यादा मात्रा में यदा-कदा अनुभव करता ही है, अत: उसे यह अविश्वसनीय भी नहीं लगता।

ताओ को 'राह', तेह को 'शक्ति', व किंग को 'संस्कृति' के नाम से भी पहचाना जाता है। वैसे ताओ को 'परम पुरुष', तेह को'प्रकृति' एवं किंग को उनका 'पुनर्मिलन' भी कहा जा सकता है। ताओ तेह किंग में भी ऐसा ही उल्लेख है- पहले बस एक परम था, उसमें से दो बने- प्रकृति का आविर्भाव हुआ और तब उन दो के मिलन से विश्व बना। अब यदि पुन: उस एक पर जाना हो तो उल्टा चलना होगा- विश्व को देखो, प्रकृति पर आओ और तब उस एक के दर्शन पाओ, उसमें समाहित हो जाओ।

मुझे तो लाओत्से के 'ताओ तेह किंग 'और भारत की ' नारीश्वर' की कल्पना में बहुत समानता लगती है। जैसे तेह के

बिना ताओ को नहीं जाना जा सकता वैसे ही नारी तत्व के बगैर ईश्वर भी अधूरे लगते हैं। इन दोनों के वभिाजन की सीमा रेखा खींची ही नहीं जा सकती। सूक्ष्म शक्ति प्रदर्शित नहीं होती, अपना महत्व नहीं जताती तो क्या उसे नकारा जा सकता है। नहीं, तभी तो लाओत्से ने हर जगह उसे उच्च आसन पर बिठाया है। वैसे ही, भारत में भी शक्ति की पूजा अलग से भी करने का विधान है, और ईश्वर के साथ भी। परम शक्ति मान कर, पहले स्थान पर शक्ति को भी रखा जाता है, यथा- सीता-राम, राधे-श्याम आदि। नर और नारी दोनों अधूरे हैं, उनके मिलन से ही पूर्ण बनता है। हर व्यक्ति में ये दोनों तत्व विद्यमान हैं। यदि वह अपने में ही उन दोनों का मिलन कर दे, संतुलन कर दे, तो वह पूर्ण बन जाय। इसमें सफल व्यक्तियों ने ही 'अनळहक़', 'अहम् ब्रह्मास्मि' की घोषणा की थी। लाओत्से हमें उस स्थिति तक पहुंचने की सरल, व्यवहारिक राह बता रहे हैं।

बालक युवा होता है तो बालपन पीछे छूट जाता है, पकड़ा ही रहे तो पूरी तरह युवा न हो पायेगा। ऐसे ही युवा भी वृद्ध होने पर, यौवन से ही लिपटे रहना चाहे तो न तो यह संभव होगा और इसकी कोशिश भी बचकानी लगेगी। "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का" वाली हालत हो जायेगी। विकास काम ऐसे ही होता है। यदि इस क्रम को समझ कर उसे स्वीकार करते जायें तो हम शक्ति के साथ एक होते जाते हैं, कोई विरोध नहीं रहता। ऐसा करने पर हमारे निर्णय स्वयं ही प्रकृति के अनुसार हो जाते हैं। इसे न मानें, न स्वीकारें तो विरोध होगा, हम प्रकृति से दूर छिटक जायेंगे और परम तक पहुंचने का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा।यदि बाह्य प्रकृति के नियमों को ह्रदयंगम कर लें, कार्य-कारण श्रृंखला को जान लें, नमित रहें, सर्व-स्वीकार कर लें तो भय का कोई कारण ही नहीं रह जाता। तब

निर्भयता शांतता ले आती है। निर्भय आक्रामक भी नहीं होते, अत: प्रतिरोध भी नहीं पाते। लाओत्से इस स्थिति को प्रत्येक व्यक्ति, संस्था, समाज व राष्ट्र में लाना चाहते हैं।तभी विश्व बंधुत्व आ सकता है, विश्व आदर्श बन सकता है।

इस पुस्तकमें लयबद्धता न खोजना, यह कोई कहानी या उपन्यास नहीं है। हर सूत्र अपने में पूर्ण है। क्रम से पढ़ने की ज़रूरत भी नहीं है। पुस्तक खोलें, जो सूत्र सामने आ जाय, वही पढ़ लें। शायद एक ही सूत्र, एक पूरे दिन के मनन के लिये काफी होगा। सूत्रों की यही तो विशेषता होती है। गागर में सागर समाया होता है।

लाओत्से राजनीति में था। राष्ट्र, समाज,संस्था के बारे में कहते हुए भी, उसने जिनसे ये बनते हैं, उस व्यक्ति को प्रमुख माना है। सारा उत्तरदायित्व व्यक्ति का है, वह किसी और को अराजकता के लिये दोषी नहीं ठहरा सकता। अत: उसे मिटाने का प्रयत्न भी स्वयं व्यक्ति को ही करना होगा। गिले-शिकवे की दुनियॉ ही खत्म कर दी लाओत्सु ने। स्वयं से, स्वयं का ही गिला-शिकवा कौन, कैसे करे। व्यक्ति तब स्वयं ही अंतर्दृष्टि की तलाश में लग जायेगा। खुद को सुधारो, अपने में गुणवत्ता लाओ, संसार सुधर ही जायेगा, उसमें गुणवत्ता आ ही जायेगी। भूत को पीछे ही छोड़कर वर्तमान पर ध्यान रखें और भविष्य में परिणाम क्या होगा, इस पर भी, क्योंकि यह देशना विश्व को एक ही इकाई मानकर दी गई है। गड़बड़ अपने स्वार्थ को महत्व देने पर होती है। अपने को तो पीछे ही रखने पर लाओत्सु ने ज़ोर दिया है। ज़रूरत यही समझने की है।

आदर्श स्थिति- प्रकृति पुरूष की समस्वरता, कैसे प्राप्त करें इसे उदाहरणों से समझाते हुए, दिशा- निर्देश भी दिये हैं- मिताचार का आश्रय लेना, नाभि केन्द्र पर ध्यान रखना, रहन- सहन

सादा रखना, प्रदर्शनकारी न बनना, ज़िद्दी न होकर लचीला रहना, खुलापन रखना, सजग रहना, लोभ, क्रोध, मोहादि से बचना और सबसे बड़ी बात- 'जस पनिहार धरे सिर गागर' की तरह कर्मरत रहते हुए भी, अंतस का ध्यान न बिसराना।

पढ़ने-सुनने में ये सीधे-सादे सरल सूत्र लाओत्से के लिये जीवन-शैली आसानी से बन गये होंगे, पर हमारे लिये बड़े मुश्किल हैं। यह तब समझ में आता है, जब प्रयत्न कर करके हार जाते हैं, फिसलते ही जाते हैं। पर इसका उपाय, इसके अतिक्रमण की विधि भी, लाओत्सु ने बतला दी है- सातत्य। निरंतर प्रयास में लगे रहो, सफलता मिल ही जायेगी।

सात-आठ अंग्रेज़ी रूपांतरों और आचार्य रजनीशजी के हिन्दी में दिये गये भाषणों को पढ़ कर, मैंने इन सूत्रों के हिन्दी रूपांतर का प्रयास किया है। प्रयास कहां तक सफल हुआ है, यह तो पाठक गण ही बता पायेंगे। मुझे लगा आज के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत बिगड़ गये माहौल को ठीक करने के लिये, ये सूत्र माकूल सिद्ध होंगे। इसीलिये स्वांत: सुखाय लिखने लगी। परिचितों में कुछ को अच्छा लगा कुछ को नहीं। बरसों तक लिखा हुआ पड़ा रहा। एक दिन मन में आया- पढ़ते तो मुट्ठी भर लोग ही हैं, उन थोड़े से लोगों को क्यों वंचित रखूं। लिखे हुये को पुन: पढ़ा, जितना कर सकती थी आसान किया, परिणाम आपके सामने है।

मालती

दो शब्द

लाओत्सु ने ताओ तेह किंग, चीनी भाषा में लिखी थी। पूरे विश्व में आज अकेली अंग्रेजी भाषा में ही, इसके अनेकों अनुवाद मिलते हैं। टीकाऐं अनेकों हो सकती हैं पर, अनुवाद इतने क्यों हो जाते हैं? ज़ाहिर है, अनुवाद में भी लेखक की अपनी दृष्टि मिल जाती है, मूल रूप कुछ बदल जाता है। सूत्र अपेक्षाकृत छोटे होते हैं, अत: स्पष्ट करने के प्रयास में यह स्वयमेव हो ही जाता है। लाओत्सु दार्शनिक थे, संत थे, साथ ही राजनीतिज्ञ भी। किसी ने दार्शनिकता की, किसी ने संतत्व की, किसी ने राजनीति की, व्यवहारिकता आदि की प्रधानता उनके सूत्रों में मानी है। मुझे तो हिन्दी भाषियों के लिये लाओत्सु के सूत्र उपलब्ध कराने थे। मुझे लगा, लाओत्सु शासक-तंत्र के एक अंग थे, उसमें सुधार लाना ही उनका उद्देश्य रहा होगा। अत: उसीको प्रधानता देकर मैंने अनुवाद का प्रयास किया है।

एक बात और, देश का शासन धर्म, नीति के अनुसार चले, शायद इसीलिये प्रचीन भारत में एक राजगुरू का शासन-तंत्र में होना अनिवार्य था। मंत्रिमंडल में उसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। राजा और प्रजा भी सत्गुणों की राह चलें, धर्म, नीति जीवन का अंग ही बन जॉय, इसलिये बच्चों की सारी शिक्षा गुरूकुलों में, वन में वहां ही ऋषियों के पास ही रख कर दी जाती थी।

पर, कालांतर में वही हुआ जो होना था। पुश्तैनी राजत्व की परंपरा ने, राजसी अहंकार को जन्म दिया। राजगुरू गौण हो गये तो वह परंपरा भी समाप्त हो गई। भले लोगों

की चुप्पी से अराजकता बढ़ गई। तब फिर से प्राचीन युग याद आया। हर व्यक्ति शासन से परेशान था। दिशा-निर्देशक की ज़रूरत थी। वह कार्य लाओत्सु ने किया। अब ज़रूरत है उस पर चलने की।

लाओत्सु के बताये अनुसार, यह महत् कार्य बचपन से शुरू करें तो ही आसान भी और संभव भी हो सकता है। मेरे देखे, स्कूली पाठ्यक्रम में, उनके बताये जीवन-मूल्यों को, अप्रत्यक्ष रूप से समाविष्ट करना होगा। अभी इस वर्ष भारत में, सीबीएसई के स्कूली पाठ्य-क्रम में इसका प्रयत्न किया गया है। विज्ञान आदि प्रश्न-पत्रों में एक-एक प्रश्न नैतिक मूल्यों का भी डाल दिया गया है। आशा है, इसे और बढ़ाया जायेगा और लाओत्सु के स्वर्णिम राष्ट्र का स्वप्न साकार हो पायेगा।

मालती
मुम्बई
दूरभाष नं: ०२२-२४२२९६०५

१

ताओ की व्याख्या

कर सकें जो व्याख्या ताओ की,
वो नहीं सनातन हो सकता,
यदि नाम उसे दे पायें तो ना नाम सनातन का होता।
ताओ है दोनों-नाम्नी और अनाम्नी भी,
अनाम्नी मानें तो है आदिम रूप वो सबका,
नाम्नी कहें तो है वह सब कुछ की ही माता,
प्रत्यक्ष-परोक्ष ताओ की यह ही है – अनुपमता ।
कर लें उसका सूक्ष्म परीक्षण, जो प्रत्यक्ष दीखता;
अमर-अदृष्ट को देख सकें, हम करें प्रयत्न ऐसा।
रहस्यमय अद्भुत द्वार यही,
सनातन तक लेकर जाता ।

२

तथ्य और उनका उपयोग

असुन्दर जब दिखता तब ही,
सुन्दर को जाना जाता,
बुरे से तुलना कर पायें,
तब ही अच्छा दिख पाता।
अस्तित्व-अनस्तित्व ऐसे,
जन्मा देते इक-दूजे को,
सरल और मुश्किल ऐसे,
पूरा करते इक-दूजे को।
लम्बे-ठिगने, ऊँचे-नीचे
विलोमों से जाने जाते,
जो ना बिसरें प्रकृत तथ्य यह,
वे ना अतियों पर जाते।
बन न गुरू, सामान्य ही रहते,
करें मदद न प्रशस्ति चाहते,
पूरक हैं विलोम, समझाते,
तभी विरोध नहीं पाते।

३

राज्य में शांति रखना

सब पद न असाधारण को दें,
तो लोग विरोध नहीं करते,
न भरें भंडार अमूल्य वस्तु से,
तो लोग चोर ना बन सकते,
स्वेच्छा पूर्ति न हो केन्द्र-बिन्दु
तो लोग असन्तुष्ट ना बनते।
करते हैं बुध शासन ऐसे –
दिल –दिमाग निज खुला रखें,
स्व स्थित ही रह आयें,
वांछाओं को कम करके,
तन-मन में शक्ति भर लें।
बिना महत् आशा के ऐसे,
काम करें और सिखलायें।
सजग रह जन हित कार्य करें,
चतुरों की युक्तियां ना चलने दें,
तब नहीं अराजकता पायें।

४

ताओ की रिक्तता

ताओ है रिक्त, फिर भी उपयोगी,
कभी नहीं यह पूर्ण भरे,
है अथाह सब ही चीज़ों के,
उद्‌गम स्रोत समान लगे।
तेज़धार को घिस देता यह,
उलझावों को सुलझाता,
अपनी चकाचौंध को कम कर,
रजकण में घुल-मिल जाता।
है अदृष्ट, अति गहन किंतु,
अनुभूति तो होती प्रतिक्षण।
ना जानूं है किसका जाया,
सृष्टि के पहले भी कैसे,
कौन, कहां से ले आया?

५

केन्द्र में स्थित रहना

भू औ नभ ना पकड़ें कुछ भी,
दूर्वा के श्वान सम देखें सब चीज़ों को,
बुध जन भी ना वस्तु-विचारों को पकड़ें,
ना उद्वेगित ही होवें,
सब ही में देख लेते क्षणभंगुरता को।
भू-नभ के मध्य फैला है शून्य,
लगता वो भौंपू जैसा,
खालीपन को उपयोग में ले हर कोई,
वो पक्षपात ना करता,
तभी शान्त हो रहता।
पर, यदि अंतस उदधेलित हो,
साम्राज्य अशांति का छाता।
ऐसे ही –
वाणी का बाहुल्य थकावट लाता,
संचित रखें केंद्र में शक्ति,
यह ही बेहतर होता।

६

सूक्ष्म रहस्य – स्त्रैण रूप

सदा अबूझा रहे रहस्य जीवन का,
स्त्रैण रहस्य यह कहलाता,
मौन, शान्त, दृढ़, ग्राहक स्त्रैण प्रकृति,
भू औ नभ का जन्म यहां ही होता।
अंतहीन विस्तार प्रकृति मां का,
बिन प्रयत्न उपयोग सभी करते इसका।
ज़रूरत पर क्रूर, वीभत्स रूप ले लेती,
पर मूल रूप स्त्रैण न बाधित होता।

७

निर्विशेष की शक्ति

हैं नित्य अमिट स्वर्ग औ पृथ्वी,
क्यों वे ऐसे होते?
ना जीते अपने ही खातिर,
तभी अमर हो रहते।
ऐसे ही बुध व्यक्ति भी,
दूजों के खातिर जीता,
निज को अलग न देखे
सबको अपना अंग समझता।
खुद को विशेष ना समझ,
सभी संग घुल-मिल जाता,
लोग रखें सर-ऑखों पर,
सबकी शक्ति पा लेता।

८

स्पर्धा-हीन श्रेष्ठता

है सर्वश्रेष्ठ जल सम हो जाना।
देता जीवन सबको पानी,
विरोध न स्पर्धा करता,
नीचे गंदे नालों में भी पहुंचे,
ताओ सा वह लगता।
आवास श्रेष्ठ स्थान से होता,
मन हो श्रेष्ठ गहराई से,
संबंध श्रेष्ठ विश्वास से होता,
हो वचन श्रेष्ठ सच्चाई से।
सुव्यवस्था हो तो शासक श्रेष्ठ,
कुशलता हो तो कर्म श्रेष्ठ,
सामयिक हो तो प्रयत्न श्रेष्ठ।
ये जब स्पर्धा नहीं करें,
निज पूर्ण शक्ति से कार्य करें,
वर्तमान पर ध्यान धरें,
कोई विरोध न तब पायें।

९

ताओ का पथ

पूरे भरे पात्र की रक्षा मुश्किल है,
कुछ कम हो तभी ठहर जाना,
चुभने वाली तेज धार,
रक्षा सदैव कर सकती ना।
अमूल्य वस्तुओं से पूरित घर,
सदा सुरक्षित रहता ना,
धन-पद का अभिमान, पास ही
खड़ी मात को देखे ना।
होते ही कार्य पूर्ण, सिमटो
और-और की ज़िद न रखो,
यह पथ ही कहलाता ताओ।

१०

सूक्ष्म शक्तियॉं

विभिन्न वृतियों को शासित कर इक करने में,
क्या अविभाजित रह सकते?
पूर्ण ध्यान केन्द्रित करने में,
क्या सद्यजात सम झुक सकते?
अंत:दृष्टि स्वच्छ रखने में
भूल नहीं कर सकते क्या?
प्रेम और शासन करने में,
बन अकर्मी रह लोगे क्या?
निर्माण करें, पालन कर लें,
पर, मालिक सा हक़ न रखें,
अनपेक्षा से कार्य करें,
प्रभुता न दिखा आगे बढ़ लें,
तो वह सब संभव हो जाता।
सूक्ष्म शक्तियॉं मानव की कहलातीं ये ही।

११

शून्य की उपयोगिता

तीस तीलियॉ मिल कर चाक बनातीं, पर
रिक्त स्थान में बैठी धुरी गति देती,
मटकी बन जाती कैसी भी मिट्टी से, पर
न हो रिक्त तो काम नहीं आ पाती।
काट दीवालें बना लिये खिड़की-दरवाज़े,
पर कमरा है उपयोगी जब होवे खाली,
जड़-चेतन अस्तित्व पुकार यही कहता-
है उपयोगी जीवन,
जब हो अंतस खाली।

१२

पंचेन्द्रियॉ अंदर-बाहर की

पांच रंग कर देते हैं ऑंखों को अंधा,
पॉच सुरों से मानव कर्ण बधिर हो जाता,
पंच-रसास्वादन भी स्वाद नष्ट कर देता।
गंध हित दौड़ ,शिकारों से मन विकृत होता,
‘ भंडार भरूं वॉछा, आत्मिक पथ रूद्ध कर देता।
बुद्धिमान इस कारण ही तो –
अंतेन्द्रिय का आदर करते,
न कि बाहय इंद्रिय का,
परिवेश बाहरी छोड़ें, तब ही
प्राप्त करें अंतस का।

१३

स्व का विस्तार न कि अहं का

सम्मान और अपमान उभय पर निगरानी रख लो,
भय और प्रशंसा स्व को करते आत्मसात, देखो।
मान उठाये, अवमान गिराये,
पाने को मान, मन नित तरसे,
खो दें न कहीं, खुद को कसते,
जानें ये तत्व मानापमान पर निगरानी रखने से।
क्या है अर्थ –भय और प्रशंसा,
स्व को करते आत्मसात का?
तन-मन में अहं भाव ही भय का कारण होता,
न हो स्वार्थ हंता का तो फिर,
किससे, कौन, किसलिये डरता?
जो अपनी मूरत जग में देखे,
वह ही तो जग खातिर जीता,
जग को जो स्व सम प्यार करे,
जग उसको ही सौंपा जाता।

१४

ताओ की प्रकृति

देख रहे पर है अनदेखा, निराकार है नाम उसीका,
सुन कर भी ना जाय सुना, अश्राव्य नाम है उसका,
पायें पर ना पकड़ सकें, अग्राह्य नाम है उसका।
तर्कातीत ये तीनों बातें, जग अनुभव झुठलातीं,
बस एक वही तो है ऐसा, जहाँ तीनों समन्वय पातीं।
उसका उगना न रोशनी दे,
छुपना भी अंधेरा ना लाये,
नामहीन वह सतत चले,
मिले,शून्य में उतराये।
तब ही तो उसे कहा जाता-
आकारहीन का है आकार,
शून्य की है तस्वीर।
दुर्गम भी इसलिये कहलाता कि –
करें सामना मुख दीखे ना,
करें अनुगमन पीठ दिखे ना।
अतः ,नियम पुरातन से ही देखो,
सजग रह प्रकृति सनातन जानो,
वर्तमान में साथ ही चलो,
है ताओ की प्रकृति यही।

१५

जागृत के चिन्ह

ताओ की आदि शक्ति जानने में जो सक्षम,
अंतर्दृष्टा,अति संवेदनशील बनें वे,
हैं गहरे इतने समझ न कोई पाये उनको,
ये चिन्ह दिखें तो समझो हैं जागृत वे।
हैं सतर्क ऐसे –जैसे बर्फीला नाला पार कर रहे,
चौकन्ने ऐसे कि आगत ख़तरों का आभास कर रहे।
ऐसे हैं विनीत कि जैसे हों वे यहाँ अतिथि कोई,
नमित रहें ऐसे जैसे कि पिघल रही हो बर्फ कोई।
स्पष्ट,सहज,भोले ऐसे कि बिना तराशी लकड़ी हों,
खुले इस तरह हैं,जैसे कि वे कोई घाटी ही हों,
समेकित रहते ऐसे –जैसे वे मटमैले पानी हों।
मटमैले जल से कर सकता कौन साम्यता?
सतत धैर्य से स्थिर हो,वह दर्पण सम हो जाता,
जीवन कारण बन जाता,संचार प्राण का करता।
स्थिर रह कर भी चल सकता कौन?
जो ताओ में रहे, न वाँछा कुछ भी करता।
अत: दृष्टा ताओ के – वाँछाओं से ना हिलते,
परिवर्तन चाह नहीं करते, सदा तुष्ट, आनंदित रहते।

१६

शाश्वत के साथ एकता

दिल को पूरा खाली कर लो,
मस्तिष्क शांत स्थिर रख लो,
भावों का उठना, गिरना, लौटना,
देख रही है आत्मा तब जानोगे।
उनका उठना, गिरना, लौटना
फिर से स्रोत में,
ही कहलाती एकात्मकता।
नियति चक्र है यह ही,
यही प्रकृति का शाश्वत क्रम है।
इस क्रम ज्ञान से बनें सहिष्णु,
सहिष्णु बन जाते निष्पक्ष,
निष्पक्ष बनें तब अंतर्दृष्टा,
ताओ से पाते एकत्व।
है ताओ का ज्ञान जिसे,
वह अनन्त हो जाता,
उसका सारा जीवन फिर,
दुःख से मुक्ति पा लेता।

१७

कुशल शासक

सर्वश्रेष्ठ शासक का है अस्तित्व कोई जाने ना,
जो उससे कुछ कम है उसको,
श्रद्धा –प्रेम दे दुनियॉ।
उससे भी कम को आदर देते,
पर, केवल भय से ही,
किंतु निम्न शासक की निन्दा करते,
सब छुप कर ही।
यह तथ्य उजागर होता इससे –
जो शासक विश्वास न करते,
वे विश्वास नहीं ही पाते।
आदेश परोक्ष रूप में आता है जब,
पूरा हो जाता कार्य, मिले मंजिल तब,
औ जनता कहती –हमने ही साधा सब,
कुशल शासक कर देता यह सब संभव।

१८

पाखण्ड का जन्म

जब एकात्मकता को भूलें,
तब स्वार्थ भाव उद्दीप्त होयँ,
लोगों को भ्रमित करने के लिये,
नैतिकता का बाना ओढ़ें।
समस्वर न रहे जब परिवारों में,
करूणा, प्रेम के पीटें ढ़ोल,
जब भ्रष्ट अराजक होवें राष्ट्र,
देश-भक्ति की ओढ़ें खोल।
सत्य ज्ञान जब रहे नहीं,
उभरा कोरा पांडित्य ही तब,
कर्म, भक्ति में रूचि न रहे,
पाखण्ड की शाखें निकलें तब।

१९

सादगी पर लौटो

छोड़ो पवित्रता का बाना, सिद्धान्त, नियम,
सौ गुना लाभ पायेंगे लोग,
छोड़ो मानवता, नैतिकता की दुहाई,
तो प्रकृत प्रेम, करूणा पर लौटें लोग,
जो भंडार न भर चतुराई छोड़ी,
तो रह न जायेंगे चोर।
पर, ये तीनों हैं कार्य बाहरी,
ध्यान रखो अंतस में यह भी –
शुद्ध रूप को ही हम देखें,
प्रकृत, सहज ही रह आयें,
स्वार्थ भाव को दूर भगायें,
सीमा वांछाओं की बांधें।

२०

भीड़ और संत

अब छोड़ो पांडित्य कि छूट जांय चिंताऐं,
सोचो क्या, कितना अंतर है-हां और ना में,
अच्छे और बुरे में भी क्या, कैसा है अंतर?
बिन सोचे व्यवहार करें औरों के जैसा,
क्या यह होता नहीं बेतुका औ बस उथला?
पर, मना रहे हैं जश्न लोग कुछ ऐसे,
जैसे कि मिला हो पद कोई राजा से,
या कि खूब ख्याति पाई कर्मों से।
बस में इकला जग से ना मतलब कोई,
उस शिशु सम पहचान जिसमें आई,
हूं असंग ,घुलने को जगह ना कोई।
सभी घिरे लोगों से जानते सबको,
अस्पष्ट हूं मैं, तिनका भी न जाने मुझको।
सामान्य लोग लगें चतुर कुशाग्र बुद्धि,
इक मैं ही लगता नीरस औ जड़ बुद्धि।
हूं तटस्थ और दिशाहीन वायु सा,
सामूहिक मन शक्ति से शासित ना होता,
प्रकृति मॉ के पोषण की रक्षा करता,
उसने जैसा सिरजा, मैं वैसा ही रहता।

२१

ताओ की शक्ति –तेह का ज्ञान

प्रकृति के सिद्धान्त नियम सब,
ताओ से ही नि:सृत होते,
अरूप, अग्राह्य वो काम करे,
प्रकृत नियमों के माध्यम से।
है व्याप्त विश्व में सतत शक्ति ताओ की,
हर कण के केन्द्र में दीपित आत्मा होती,
अस्तित्व सदा से रहे उसी पर निर्भर,
वह शक्ति तेह करती ताओ अभिव्यक्ति।

२२

पूर्णता की शक्ति – विलोम

विनीत को ही मिलती प्रभुता,
झुकना दृढ़ता ला पाता है,
जो खाली हो वो भर जाता,
थकना ताजा कर देता है।
थोड़ा ही प्राप्ति योग्य होता,
ज़्यादा तो भ्रमित कर देता है।
विलोम प्रकृति आदर्श मान,
उस एक को बुध थामे रहते,
जब न प्रदर्शन करते अपना,
तब ही प्रतिभासित होते।
बनें न यदि वे प्रतिद्वन्दी,
जग स्पर्धा न करे उससे,
जब दावा नहीं करें कोई,
तो सारे श्रेय उन्हें मिलते।
नमित जीवन ही होता पूर्ण,
प्राचीन कथन यह ना मिथ्या,
जो बनना चाहें पूर्ण तो फिर,
अंतस की ओर झुकना पड़ता।

२३

एकात्मकता की शक्ति

प्रकृति कदाच् ही मुख खोले,
चक्रवात वायु ना पूरी भोर चले,
ना तूफानी वर्षा सारे दिन चल पाये।
कारण है कौन इसका,
क्या स्वर्ग और पृथ्वी?
जो ताओ में घुलें न क्षणभंगुरता आती,
बचता नहीं निसर्ग तो मानव की क्या हस्ती?
जो ताओ को निज में देखे,
ताओ से इकरस हो जाता,
शक्ति बीज जो निज में जाने,
शक्ति के संग इक हो जाता।
जो असफलता सोचा करता,
वो असफलता में घुल जाता,
ताओ से एकात्म होय जो,
ताओ उसका स्वागत करता।
शक्ति से एकात्म होय जो,
वह शक्ति से स्वागत पाता,
असफलता से एक होय जो,
उससे ही अभिनन्दन पाता।
जो विश्वास नहीं कर सकता,
वो विश्वास नहीं पाता।

२३

व्यर्थ कर्म

जो पंजों के बल खड़े होयँ,
दृढ़ता ना पाते,
ताने रखें पगों को जो वे चल ना पाते।
जो खुद को दिखलाना चाहें,
दीप्त कभी ना हो सकते,
जो अपना औचित्य बखानें,
कैसे सही वे हो सकते?
जो करते हैं दावा,
वे ना श्रेय कभी भी पाते,
करते जो अभिमान,
न वे विकसित हो पाते।
ताओ में रहने वालों को,
प्रकृत नियमों से अलग-थलग,
ये हंता कर्म व्यर्थ लगते,
तभी पीठ वे इनकी ओर कर लेते।

२५

महानता के गुण – धर्म

जीवन के पहले क्या था –पृथ्वी
पृथ्वी के पहले क्या था – विश्व
विश्व के पहले क्या था?
ध्वनि, रूप, आदि औ अंत बिना, मुक्त और अनाम्नी,
स्थिर फिर भी गतिशील ही होगी वह जगजननी,
लगता है ऐसा।
नाम न जानूं उसका तब ताओ कह देता।
है ताओ का अर्थ - महान।
अंतहीन जग उसने घेरा,
हर कण में है उसका बसेरा,
उसकी शाश्वतता ने ही जग सिरजा,
जग ने पृथ्वी, पृथ्वी ने हमें बनाया,
इसलिये हुए हम भी महान्।
तभी बना है मानव भू के जैसा,
भू का भी सृजन हुआ है जग के जैसा,
बना है यह जग भी ताओ के जैसा,
क्योंकि, हर कण में शाश्वत ताओ ही रमता।

२६
निश्चलता की चुंबकीयता

गुरूता हो नींव हल्केपन की,
निश्चलता स्वामी चंचल की।
संत करे यात्रा सब जग में,
पीछे न छोड़ अंतस थैला,
हों मनमोहक दृश्य प्रलोभन,
वह रहे शान्त ना मन फिसला।
दस हज़ार बग्घी का स्वामी, जग में
हल्का दिल लेकर, कैसे रह पाता?
अंतस की सजग दृढ़ता से ही यह संभव होता।
क्योंकि, उथलापन दर्शाता, नींव से हटना,
चंचलता कहती – स्व पर प्रभुता है ना।

२७

परस्पर सद्भाव

कुशल पथिक, पथ पर कोई चिन्ह नहीं छोड़े,
कुशल वक्ता के भाषण में ना दोष रहे,
सुविश्लेषण में पुनर्विचार नहीं होवे।
अच्छे ताले में कील न पेंच,
फिर भी खोला ना जा सकता,
बिन रस्सी जो बंधा ठीक से,
बंध मुक्त ना हो सकता।
कुशल नेता सम्मान करे हर जन का,
कोई प्राणी व्यर्थ नहीं होता,
कुशल संयोजक कुछ ना फेंके,
हर चीज़ काम में ले लेता।
कहते हैं इसे- ज्योति का अनुगमन करना।
गुरू तभी हो जाता सज्जन दुर्जन का,
औ दुर्जन हो जाता शक्ति स्रोत सज्जन का।
ताओ पथ पर चलने वाले,
सद्भाव परस्पर रख लेते,
भ्रामक लहरों में ना फंसकर,
निज ज्योति द्विगुणित कर लेते।

२८

संत नेता

जान कठोर, रहो कोमल तो जग धारा बन जाओ,
जगधारा बनकर अखंड के साथ बहोगे,
पुन: बालवत् हो जाना है यह ही।
जान श्वेत को रहो श्याम में,जग प्रतिभा बन जाओ,
प्रकृति- पुरूष के मेल से शक्ति डगमग ना होगी,
लौटना असीम में, है यह ही।
जान प्रशस्ति रहो नमित ही,जग घाटी बन जाओ,
रीतोगे ना, उस सम दानी बन जाओगे,
पुन: लौट आना प्रकृत पर, है यह ही।
अत: संत नेता –
काट-छांट पर ज़ोर न देते,
प्रकृत रूप देखें औ दिखाते,
ऐसे परिवर्तन ले आते।

२९

तैरो ना बहो

जो जग को स्ववश रखना चाहें,
देखें वे ना कभी सफल हो पायें।
है यंत्र रहस्यमय ये दुनियॉ,
इस पर कोई ज़ोर नहीं चलता,
हम सभी अंग हैं उसके ही,
काटें-छॉटें तो सभी नष्ट हो जाता।
प्रकृति से आये हैं हम सब,
प्राण,लय,ताल उसीसे,उस सम पाते,
खींच-तान जो करें तो जग
संतुलन हमीं खो देते।
अतियों पर जाने का यत्न,
एकात्मक ना रहने देता,
अंगी रह अपना कार्य करें तो
सुख-शांति साम्राज्य छाता।

३०

आक्रान्ता ना, रक्षक बन लो

पथदर्शक नेता ताओ का यदि उपयोग करें,
ना अपनायें बल प्रयोग की नीति जग में,
बल प्रयोग बस सक्षम होता उलझाने में।
सेनाऐं चलतीं जहॉ, झाड़ियॉ कांटों की उग आतीं
भुखमरी अनेकों वर्षों तक तब छा जाती।
बुद्धिमान तो प्रकृत नियम का पालन करते,
दुरूपयोग शक्ति का वे तो कभी न करते,
केवल प्रतिरक्षा के हेतु युद्ध कर लेते।
बदले की भावना ना रखते,
इसमें वे अभिमान न करते,
गौरव की भी चाह न रखते,
अधिकार किसीका नहीं छीनते।
आक्रान्ता तो करे नष्ट शक्ति,मानवता,
खुद का औ जग का विनाश ही बस वो करता,
ताओ पथ तो यह ना होता।

३१

शस्त्र प्रयोग-मज़बूरी

अस्त्र-शस्त्र बन सकते हैं-दुर्भाग्य यंत्र,
भय और घृणा ही उपजाते,
ताओ अनुगामी उनका अधिक प्रयोग न करते।
बुद्धिमान तो बाईं-स्त्रैण मति का ही करते आदर,
जो करते शस्त्र प्रयोग करें वे दाईं-पुरूष मति का आदर।
यदि होवे अनिवार्य तो बुधजन,
संयमी,शांत हो, कर लेते शस्त्रों का उपयोग,
पर,विजय की खुशी मनाते ना।
खुश होना बतलाता खुशी मिली हिंसा से,
आत्मिक पथ यह होता ना।
ऐसे में विजयोत्सव ना कर,शोक मनाता है जो,
शांति,तोष पूर्ण जीवन की ओर ही,
क़दम बढ़ाता वो।

३२
विशिष्टता से बचो

ताओ का है नाम नहीं कुछ,
इतना है साधारण वह,
फिर भी उसका अनुगमन ना कर पाये जग।
'हम विशिष्ट' का मोह ना करें,
एकात्मकता साधे रक्खें,
तो प्रकृत रूप से स्वतः सदा,
सब शुभ होता जायेगा।
बॉट देता खंडों में, जग को विशिष्टता का मोह,
खंडों के खंड होते जाते,पनपते द्वेष औ रोष।
नद,नाले,झरने स्वपथ चल,
जनक सागर से मिल लेते,
हम हैं विशिष्ट भाव छोड़ें तो
जन, ताओ से मिल सकते।

३३
वास्तविक ज्ञान

दूजों को जानकर जन हो जाता बुद्धिमान
अपने को जानकर ही बन पाता ज्ञानी,
दूजों को जीतकर वह बन सकता पहलवान,
खुद को जीते तब है शक्ति में मानी।
जो होता संतुष्ट, धनी वह ही तो होता,
दृढ़ मति रखनेवाला ही संकल्पी होता,
जो रहे केन्द्र से जुड़ा, वही आनन्दित रहता,
मरकर जो ना नष्ट होय, वो ही मृत्युंजय होता।

३४

व्यापकता

सभी ओर फैला है ताओ,मुक्त बाढ़ सा,
हर जड़-चेतन इसके रस से सिंचित होता।
सब चीज़ों को यही बनाता, पालन करता,
पर न कभी स्वामित्व जताता।
रहे मौन औ शांत, ना कुछ भी हो वह जैसे,
इसको लघुतम भी कह सकते।
पर, जब इसमें सब कुछ घुलता,
इसे महान कहा जा सकता।
है महान वह ना जतलाये,
कर्मों से महान कहलाये,
तभी जग उसके पीछे धाये।

३५

अतीन्द्रियता का अनुभव

ताओ के संग जो एकात्मक हो,
जग उसकी ओर खिंचा आता,
जैसे कि उसके माध्यम से वह,
स्वास्थ्य,शांति,रक्षा पाता।
करें भले आकर्षित पहले,
खान-पान और राग-रंग ही,
फिर आनंद अनुभूति बताये,
मिला उस संग से कुछ अमुल्य भी।
मौन-गान ताओ का भीड़ में,
उस संसर्ग से सुन पाया हूं,
स्वत: मिली नेत्रों को ठंडक,
तन-मन ना थकें,ताजा रहता हूं।

३६

प्रदर्शन से बचो

फुग्गे को फोड़ना होवे 'गर,
ज़्यादा ही उसे फुला देते,
कोई हद से ज़्यादा शक्ति दिखाये,
'कम कर दें' लोग यत्न करते।
ऊंचे को सभी काट देते,
बहुमूल्य दिखे तो छीन लेते,
तभी विदु धन,पद,शक्ति का,
कभी प्रदर्शन ना करते।
जन-मन में जगह पानी हो तो,
जीवन रीति सामान्य रखो,
बाहर न निकालो,जल से मछली,
भंडार प्रदर्शन से बच लो।

३७

निर्वांछा में शक्ति

करने का आदेश कभी ताओ ना देता,
स्वयं भी कुछ करता ना दिखता,
फिर भी, सब कुछ भली-भांति हो जाता।
यदि नेता इसे समझ जांयें,
तो व्यक्ति संग जनता औ राष्ट्र भी,
सहज ही विकसित हो जायें।
फिर भी यदि नेता चाहें,
प्रत्यक्ष काम करना-करवाना,
तो रह अनाम, सामान्य, सीख लें,
सभी कार्य मिल कर करना।
ऐसा व्यवहार बतलायेगा,
निज हित ही ना इच्छा उसकी,
स्वत: तब जनता तन-मन से,
ऐसे कर्मों में लग जाती।

३८

सदाशयता

निज को गोपन रखे हमेशा सदाशयी,
जो निज महत्व उघाड़ बताये,
हंता उसमें प्रमुख रही।
प्राणीमात्र की ज़रूरत पूर्ण करे नि:स्वार्थी,
अपना हित पहले नंबर पर रखता स्वार्थी।
सबके लिये नियम हैं सम,यह गुणी मानता,
निज हित नियमों में बदलाहट अगुणी लाता।
अंतर्भाव हैं महत्वपूर्ण, नैयायिक जाने,
रूढ़ि-रीति सर्वोच्च है, यह अन्यायी माने।
जब एकत्व न साध सकें,
तब मानवता की बात करें,
जब मानवता न साध पायें,
नैतिकता मध्य में ले आयें,
जब नैतिक भी ना रह पायें,
रूढ़ि का राग अलापे जायें,
कर्म-कांड के भ्रम में फँस,
अंतर्आतमा को भूल ही जायें।
पैगंबर को कह सकते ताओ का फूल,
पकड़ से हो अज्ञान जनक, ना जायें भूल।
पर,सहज प्रकृत बुध, भेदक दृष्टि रखते,
भूसे की परतों में ना फँस,
अंत:दाना पा लेते।

३९

समस्वरता

प्राचीन काल से ही है प्रकृति, पूर्ण और एकात्मिक,
तन-मन-आत्मा की अखंड समस्वरता यह संभव करती।
तभी तो है आकाश स्पष्ट, पृथ्वी थिर,
मन तेजोमय, घाटी प्रफुल्लित।
जन प्रकृति भी प्रकृति सम अविकारी रहना चाहे,
तो रहे और रहने दे अखंड सब,नूतनता आ जाये।
जग अखंड ना रहे तो शायद,
गगन गिरे भूतल हिल जाये,
खंडित तन-मन दीप्त न हों,
घाटी में रूखापन छा जाये।
अखंडता,नूतनता बिन
सब हों जैसे निष्प्राण,
अराजकता छा जाये यदि
समस्वरता करे न काम।
निज को अखंड औरों को खंड ना समझो,
समस्वर रह सबसे, पूर्णकाम हो जाओ।
मैं ही मणि सम चमकूं,करो ना वांछा,
हर जन है मोती माला का,
तन-मन-आत्मा इकजुट कर, नियत कर्म कर लो,
फिर इकलापन ना खले, न आये निराशा।

४०
उलटबॉसी

चलायमान है नित ताओ ना रूके कभी भी,
पर लगता है जैसे हो वह,
सदा-सदा स्थिर ही।
जीव-जगत के रूप, रंग, गंध,
अस्तित्व से आये ऐसा लगता,
पर,जनक वो आया, अनस्तित्व से,
उसमें ही अंत में, सब घुल जाता।
है ताओ का कार्य, लौटना अपने स्रोत में,
पथ है-कोई पकड़ न रखना तन या मन में।
जानें हम अस्तित्व से ही आता सब जग में,
पर,अस्तित्व स्वयं आया है,
अनस्तित्व से समझें-बूझें।

४१

ताओ पथ की पहचान

ताओ के बारे में सुन प्रतिभाशाली,
उस पथ चलूं यत्न करता,
जन-सामान्य सुने ताओ तो,
सोच-विचार करता रहता।
पर,अज्ञानी सुने तो केवल,
अट्टहास करता रहता,
प्रमाण ताओ का इससे ही मिल जाता।
क्योंकि ज्ञानियों का कहना है,ऐसा-
जिसमें भी प्रकाशित है ताओ,
वह धुंधला ही दिखलाता,
यदि बढ़ रहा आगे तो वह,
लौट रहा सा दिखता,
यदि समत्व पाया उसने,
तब तो बस उच्छृंखल दिखता।
चरित्रवान लगता कमज़ोर,
स्वच्छता लगती दाग़दार,
घनी शक्ति छितरी लगती,
रचनात्मक का ना हो इसरार।
ज्ञान प्रौढ़ता आती धीरे-धीरे,
महासंगीत में धीमी ध्वनि होती रे,
अदृश्य, अरूप, अनाम्नी ताओ
सबके बीच रहे ना कुछ सा,
सहज नहीं सबको दिख जाता,
फिर भी,सबको पोषण,और पूर्णता देता।

४२
यिंग और येन

ताओ से एक का जन्म हुआ,
उस एक से ही उपजा दूजा,
दोनों ने बनाया मिल तीजा,
उससे यह सारा विश्व रचा।
स्त्रैण-पुंसत्व, कोमल-कठोर,
ये तत्व विरोधी सबमें होते,
उभय मिलन होता रचनात्मक,
जन पुष्टि-तुष्टि पा जाते।
जो यिंग को लेकर चलें,
येन को पकड़ रहें,
मिश्रित प्रभाव दोनों के,
लयबद्ध उन्हें कर दें।
एक तत्व से ही जब समरस होवें,
निज को इकला शक्तिहीन तब पायें।
दोनों तत्वों को संग ले चलनेवाला,
कुछ खोकर पाता,पाकर कुछ खो देता,
पर, परिणाम समत्व पा लेता।
सामान्य व्यक्ति सम मैं भी कहता-
हिंसक व्यक्ति,हिंसक मृत्यु ही पाता,
पथ समत्व का अंतकाल में,
खोल न पाता।

४३

नाहम् भाव

सर्वाधिक झुक सकनेवाला जग हिस्सा,
जो है कठोरतम उसको भी छा सकता,
जिन कर्मों का प्रेरक हंता ना होता,
जन-मन पर वह ही अपनी छाप छोड़ता।
बिन बोले प्रभावित कर सकना,
रह अकर्मी सब कुछ कर लेना,
मुश्किल है यही समझना औ कर पाना।
पर,है यह ही जन की शक्ति, बुध ने जाना,
मुश्किल होता ऐसा ज्ञानी जग में मिल पाना।

४४
कम ज़रूरतों की शक्ति

सर्वाधिक प्यारा क्या लगता,
नाम या कि जीवन?
क्या लगता तुम्हें अमूल्य,
अपनी निजता या धन?
क्या लगे नाशकारी तुमको,
पाना या खोना हरदम?
जितना अधिक मोह होगा,
पीड़ा उतनी ज्यादा होगी,
संग्रह जितना ज्यादा होगा,
उतनी गहरी हानि होगी।
अब काफी है जब जान लिया,
गरिमा को खो ना पाओगे,
कब रूकना है का ज्ञान हुआ,
जग में निर्भय चल पाओगे,
जीवन आनंदमय कर लोगे।

४५

रिक्तता का उपयोग

यदि महापूर्णता कुछ अपूर्ण रह जाये,
उपयोगीपन में कुछ न कमी आ पाती,
है श्रेष्ठ पूर्णता कुछ खाली रह जाना,
तब ही अनन्त लाभान्वित वह हो पाती।
लचीली होती प्रभुता श्रेष्ठ,
दिखे मूढ़ता बुद्धि विशेष,
श्रेष्ठ वाग्मिता लगती है तुतलाती,
स्पष्ट व्यवहारिकता तो वक्र ही लगती।
हलचल की गर्मी ठंडक पर जय पाती,
गर्मी को ,थिर ,इकलय सांस हराती,
भले लगे है रिक्त अभी, पर
स्पष्ट,रिक्त,शांतता व्यवस्था लाती।

४६
संतोष की राह

जब जग चलता ताओ के पथ पर,
तेज अश्व खेती के काम ही आते,
जब जगत छोड़ देता ताओ की राहें,
घर-घर में युद्ध के घोड़े ही दिखलाते।
लालच से बड़ा न कोई पाप,
असंतोष सा ना दुर्भाग्य,
है स्वामित्व बड़ा इक दोष,
तोष सदा बनता सौभाग्य।
बहुत हो गया बहुत जान जो रूक जाये,
तो बहुत सदा ही उसके पास रहा आये।

४७

अंतर्दृष्टि से ज्ञान प्राप्ति

घर के बाहर ना निकलो फिर भी,
दुनियॉ को जान सकते हो,
बिन झांके खिड़की के बाहर,
ताओ को जान सकते हो।
पूरी दुनियॉ की यात्रा करके
भी न जान सकते इतना,
निज में ही झांक कर बुध व्यक्ति,
ज्ञान प्राप्त करते जितना।
देखूं जग-जन चेष्टा न करे,
अंतर्दृष्टि से सब दीखे,
आगे बढ़कर कुछ करे नहीं,
पर,ज्ञान ,कर्म ना शेष रहे।

४८
अकर्म की कला

यदि पंडित बनना हो तो नित,
ज्ञान भंडार भरे जाओ,
यदि ताओ को पाना चाहो,
बाह्य ज्ञान बिसराये जाओ।
खाली करो, उलीचो सारा,
अंतस्थल में सार रहेगा,
यदि अकर्म पर जाना है तो
कर्म पैदा ना करना होगा।
स्वामित्व न जतलायें तो सब,
स्वत: ठीक चलता रहता,
दें दख़ल प्रकृत कर्म में तो
अस्त-व्यस्त सब हो जाता।

४९
मन का खुलापन

ज्ञानवान का मन स्व से अवरूद्ध न होता,
जन-मन में घुल वह उनको, आकर्षित कर लेता।
उन संग जो सज्जन हैं,वह सज्जन ही रहता,
उन संग भी जो ना सज्जन,सज्जन ही रहता,
प्रकृत गुण है सज्ज्नता, उससे ही मन खुलता।
जो करते विश्वास, भरोसा ज्ञानी उनका करता,
जो न करें विश्वास, भरोसा उनका भी कर लेता,
है विश्वास ही शक्ति प्रकृत, जिससे मन खुल जाता।
बुध ऐसे ही नम्र,नमित रह,
जन-मन में घुल जाते,
नेत्र,कर्ण सब लोग उन्हीं पर केन्द्रित करते,
वे सदैव बस बालकवत् ही क्रीड़ा करते।

५०

जीवन संरक्षण की कला

जब जीवन बाहर जाता,मृत्यु अंदर आ जाती,
जीवन-मृत्यु का यह नियमन कैसे होता?
दस में से तीन व्यक्ति जीवन को कस कर पकड़ें,
और तीन मृत्यु की छाया से भयभीत रहें,
और भी तीन जीते हैं पर मृत्यु की राह तकें।
इन तीनों वर्गों के जन,बस बाह्य परिधि पर जीयें।
दस में से एक है ऐसा,जो अंत:परिधि पर जीता,
जीवन परिवर्तन को जग कहता है-मृत्यु,
पर,वह तो महाजीवन कहता।
चीतों औ भैंसौं से उसका, मिलन न होता,
सेनाओं से भी तो उसका कवच न बिंधता।
भैंसों चीतों को जगह न मिलती,
सींग गड़ायें, पंजे मारें,
सेना को ना जगह मिले,
तो वे तीक्ष्ण शर कहां गड़ायें?
कैसे वह ऐसा कर पाता?
मृत्यु परिधि के बिन वह,
जीवन जाने औ जीये जाता।
जीवन परिवर्तन का वह साक्षी बन जाता,
अंत और आरंभ गुंथे जब,
वह चिंता क्यों, कैसे करता?

५१

ताओ और उसकी शक्ति तेह

ताओ सब कुछ जन्माता,
पर, सब रूपायित होता,
प्रकृति के भौतिक तत्वों से,
वह तेह, बनी पालनकर्ता।
ताओ को पूजना, आदर उसकी शक्ति को देना,
क्योंकि, दोनों हैं परस्पर पूरक ही।
जन्माता है सब कुछ ताओ,
शक्ति उसकी पालन करती,
वही बढ़ाती आश्रय देती,
करती पूर्ण औ रक्षा करती।
वह जन्माये पर करे न अधिकृत,
यह करके कर्म, करे ना उपकृत,
विकसित करे, न करे नियंत्रित,
कहते इसको ही शक्ति अद्भुत।

५२

परम का ज्ञान

सृष्टि का आरम्भ,सृष्टि की मॉ से ही होता,
यदि आदि मॉ को जान लिया तो
सृष्टि शिशु को जान ही लोगे।
सृष्टि को जान कर भी,
जग-जननी से संबंध न छोड़ा,
तो मृत्यु-भय से स्वतंत्र हो जाओगे।
सृष्टि को नकारें यदि हम
तो जीवन व्यर्थ करें,
सृष्टि में उलझ मॉ को भूलें,
तो भी शांति ना पायें।
विराट ही ना अणु को भी देखना,
अंतरदृष्टि कहाती,
फिर सहज सभी को अपनाना,
जीवन रीति बन जाती।
बाह्य ज्योति उपयोग करें,
अंतरदृष्टि ना बिसरायें,
संतोष,प्रेम,शांति से तब
तन-मन भर जायें।

५३

महापथ औ पगडंडी

सामान्य बुद्धि उपयोग से ही मैं,
महापथ यात्रा कर लूंगा,
बस सावधान रहना होगा कि
भटक नहीं जाऊं मैं।
महायात्रा का पथ होता है,
सहज और सीधा,
पर, है ज़ुनून लोगों को,
निज की पगडंडी का।
हो जाता तब शासन भ्रष्ट,
खेत व्यर्थ हो जाते,
भंडार रिक्त हो जाते।
बढ़ जाते हैं साज-श्रृंगार,
खड्ग तेज हो जाते,
खान-पान बढ़ जाते।
धन और वस्तुऐं कुछ लोगों में ही
संचित हो जातीं,
भाई-चारा ना रहता।
इसको ही चोरी और दिखावा कहते,
ताओ की राह यह ना होती।

५४

सार्वभौमिक दृष्टिकोण

दृढ़ता से जो जमा हुआ है, ना उखड़ेगा,
पूर्ण समझ से पकड़ा जिसको ना फिसलेगा,
वंशों की पहचान युगों तक,
यह ही गृह-संस्कार बनेगा,
जग का नियम सदा से था यह,
है भी और रहेगा।
सुसंस्कारित कर निज को,
शक्ति वास्तविक मिलती,
घर को जो सुसंस्कृत कर लें,
गृह-शक्ति बढ़ जाती।
करें समाज सुसंस्कृत उसको
प्रचुर शक्ति मिल जाती,
राष्ट्र करें जो सुसंस्कृत उसको
महाशक्ति मिल जाती,
यदि कर लें जग को सुसंस्कृत,
शक्ति सार्वभौम हो जाती।
यह तब होता, जब जो है सो ही देखा जाता,
निज अंतरआत्मा से पर अंतस को परखा जाता,
इसी तरह समाज, देश औ जग भी जाना जाता।

५५

असंघर्ष की शक्ति

गहन शक्ति मिलती है ,जब शिशुवत् हो जायें।
ज़हरीले कीड़े दंश न दें,
शिकारी पक्षी ना नोंचें,
जंगली पशु हमला न करें।
हड्डियॉ मुलायम हैं उसकी,
हैं शिथिल मांस-पेशियॉ भी,
पर, पकड़ उसकी दृढ़ होती।
नर-नारी मिलन ना जाने अभी,
तो वीर्य-नाश ना होता,
पूर्ण शक्ति संचित रहती।
पूरे दिन बोले,चीखे,
आवाज़ नहीं भर्राती,
तन,मन,आत्मा की समरसता,
सहज प्रकृति है उसकी,
परमज्ञानी सा वह ही उसे बनाती।
ज़बरन साधें योग तो वह बस,
व्यर्थ तनाव बढ़ाता,
शक्ति को कम कर देता,
सहज समत्व न लाता।

५६

एकत्व प्राप्त करना

पाना है एकत्व यदि तो मौन रहो,
सजग इंद्रियों के प्रति होओ,
तेज़धार को करो भौंथरा,
दिल-दिमाग की गांठें खोलो।
चकाचौंध को भी कम कर लो,
सहज राह से एकीकृत हो जाओ,
यही गहन एकात्मकता कहलाती।
इसे न पा सकते हैं-
मोह से या कि त्याग से,
या कि कठोर,नम्र होने से,
हानि-लाभ औ निन्दा या कि प्रशंसा से भी।
जो ऐसी स्थिति प्राप्त करे,
मानापमान ना उसे प्रभावित कर सकते,
समभाव से ही वह जग देखे,
लोग स्वयं ही नेता उसे मान लेते।
तभी जगत की अमूल्य वस्तु,
यह एकात्मकता ही कहलाती।

५७

अप्रयत्न में शक्ति

संस्था को चलाओ तथ्यों से,
सेना को विस्मय युक्ति से,
जग को शासित कर लोगे बिन कोशिश के।
होगा ऐसे ही, कैसे मैं जानता इसको?
इन शाश्वत नियमों से-
जो होवें ज्यादा निषेध,
जन अकर्मण्य बन जाते,
ज़्यादा शस्त्र रखें जो देश में,
राष्ट्र अराजक बनते।
ज़्यादा चालाकी हो तो
जनता विश्वास नहीं करती,
कानून नियम ज़्यादा हों तो
ज़्यादा हिंसक पैदा करतीं।
शासक संत तभी तो कहता-
अक्रिय रह मैं कर्म करूं तो
जन ना व्यर्थ काम करते,
रहूं मौन शांतानंद में तो
जन भी सुसंस्कृत हो जाते,
लोगों की लाठी बनूं न तो
स्वयं यत्न से समृद्ध होते,
स्वेच्छा की पकड़ दिखे ना मुझमें,
तो स्वयं सरल वे बन जाते।

५८

सुलझा व्यक्तित्व

जब शासन कठोर ना हो तो,
सीधे-सरल लोग होते,
ज़बर्दस्ती का शासन हो तो,
लोग चालाकी सीख लेते।
कभी दु:ख दिखता सुख की जड़ में,
कभी सुख के पीछे चला आता,
गद्दारी दिखे ईमान की जड़ में,
शैतान, भले में दिख जाता।
भ्रमित हो जाते जन जब देखें ऐसा होता,
कैसे जानें छुपे हुये अंतस की सत्यता?
सजग रहें तब ही जानें,
विकसित जन ऐसे होते-
नैयायिक बिन पक्षपात के,
स्पष्ट बोलते बिन कटुता के,
सुलझाते समस्या बिन कैंची के,
नि:स्वार्थी रह प्रकाश फैलाते,
अंदर-बाहर इक से होते।

५९
मिताचार की महिमा

ताओ सा शासन करना हो, तो
इक प्राकृतिक नियम,
मिताचार- है सबसे अच्छा।
वह हिल-मिल चलता,सबकी सुनता,
लोक-शक्ति संचित कर लेता।
जब शक्ति संचित हो जाती,
कुछ भी न असंभव रहता।
न हो असंभव जब कुछ भी,
जन सीमा में ना बंधता।
जो सीमा में ना बंद रहे,
संस्था का स्वामी बनने योग्य वही होता।
जिस संस्था का ऐसा हो स्वामी,
वह सब सह, वृद्धि पा जाती,
उसकी नींव होती है गहरी।

६०

सजग निगरानी की ज़रूरत

वृहद् राष्ट्र संस्था को चलाना,
लघु मत्स्य पकाने सम ही मुश्किल होता,
पल भर को ध्यान चूका, तो सब
किये-कराये पर पानी फिर जाता।
ताओ, यदि संस्था में छाया हो,
चालाक रहस्य न रख पाते,
सब रहते सजग,वहां उनके,
छल-छद्म नहीं चल पाते।
पल-छिन मनमानी करके,
शासक भी न हानि पहुंचा सकते।
दोनों से न जब होती हानि,
सब ही लाभान्वित होते,
शक्ति पाते।

६१

पारस्परिक सद्भाव

यदि बलशाली स्थिरता चाहें,
स्वयं उन्हें,झुक आना होगा,
हाथ बढ़ाना होगा,निर्बल को भी,
है यही रहस्य, उभय शक्ति-संगम का।
नारी अपनी स्थिरता से,सदा ही नर को जीते,
नमित रहना ही उसकी शक्ति बन जाती,
नर हाथ बढ़ा जब मिलता उससे,
दोनों की ही शक्ति दुगनी हो जाती।
दोनों तत्वों का मिलन करे अपने में,
तब ही जन स्थिरता,विस्तृतता पाता।
जग के ज्ञानी - पुरूष तत्व को
स्थिरता मिल जाती,
मन के ज्ञानी - नारी तत्व को
विस्तृतता मिल जाती,
इक झुके औ दूजा हाथ बढ़ाये,
पूरा होता मिलन तभी,
पूर्णकाम हो जाते दोनों,
चहुं ओर खुशी छा जाती।

६२
सबकी धुरी ताओ

ताओ है प्रमुख धुरी सबकी,
सज्जन का भंडार यही,
असज्जन का भी है रक्षक।
प्राप्त किया जा सकता,
आदर सुशब्दों से,
मिले साथ दूजों का अच्छे आचारों से,
कोई यदि सुसंस्कृत ना तो कहें न उसको व्यर्थ,
अंतस की जागीरी देखें,
दे दें उसको अर्थ।
नेताओं को धन, जन औ मतदान यूं ही ना देना,
ताओ में ही वह रहे सदा,
सजग रह तुम, जतलाना,
जग के स्वर्ण युगों के पूर्वज ऐसा ही करते थे।
अच्छाई का स्रोत और ईलाज बुराईयों का,
जगत् कोष में इक ऐसा, ताओ ही तो है।

६३

लघुतम प्रतिरोध का पथ

अकर्मी बन कर कार्य करो,
स्वादहीन का स्वाद भी लो,
देखो अणु में वृहद्, क्षुद्र को गरिमा दे दो,
ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि पर करूणा कर लो।
जब होवे आसान कठिन का तब आयोजन कर लो,
जब हो छोटा, बड़े कार्य का तब संयोजन कर लो।
सुदूर प्रभाव आंक कर ऐसे,
कार्य सहज संपादित कर लो।
जो तत्क्षण ही वचन देता,
विश्वास अल्प उसका होता,
पर,जो ना तत्क्षण काम करे,
उलझावों से जोड़े नाता।
विश्वास, धैर्य से बुध जन,
आगत कार्य पूर्ण कर लेता,
दूर-दृष्टि से किया काम,
प्रतिरोध न ज़्यादा पाता।

६४
भ्रूणावस्था पर कार्य

आसां है नियंत्रित करना उसको, शांत पड़ा हो जो,
योजनाबद्ध कर सकें उसे, शुरू हुआ ना जो।
होवे पतली सतह तभी आसां पिघलाना,
थोड़ा ही हो तब आसां होता बिखराना।
सब चीज़ों से उनकी भ्रूणावस्था में ही निपट लो,
बढ़ें न पंख उपद्रव के पहले ही उन्हें क़तर दो।
बनता वृक्ष विशाल एक छोटे अंकुर से,
बने भवन नौ मंजिल का मिट्टी ढ़ेले से,
हो शुरू हज़ार कोस यात्रा,एक ही क़दम से।
विकसित को काटें-छांटें तो वो विरूप हो जाता,
यदि पकड़ना चाहें तो वो मुट्ठी में न समाता,
अत: न बुधजन कार्य वृहत् पर करते,
दूरदृष्टि से आंक सूक्ष्म पर पूरी शक्ति लगाते,
बिन प्रतिरोध तनावों के सब कार्य सफल हो जाते।
स्वार्थ बुद्धि से नहीं, समष्टि बुद्धि से वे प्रेरित होते,
वस्तु, विचार कुछ भी हो, निज हित एकत्रित ना करते,
शिक्षा उनको भी मिल जाती तब बिन सीखे।
ज़ोर-ज़बर्दस्ती बिन वे ऐसे सबको सहारा देते,
निज प्रकृत रूप के सभी सहज साक्षी बन जाते ऐसे।

६५

ज्ञान नहीं प्रज्ञा

वे पूर्वज जिनने ताओ का पथ जाना,
लोगों को बनायें बहुज्ञानी उनने ना माना,
ज्ञान-भंडार बनाने से अच्छा समझा, अज्ञानी रखना।
क्योंकि, जब हो जाये अतिशय ज्ञान,
है कठिन शांत रह ले इन्सान,
हंता के टकराव में भूल जॉय ताओ का भान।
जो देश को शासित करना चाहें,ज्ञान की चतुराई से,
हानि देश की वही करें,
बिना ज्ञान चालाकी के जो देश का शासन कर लें,
वे उसके वरदान बनें।
इन दोनों तत्वों के ज्ञाता,
चिन्ह पूर्ण के जानें,
सतत रहे जब समतुल ज्ञान,
तब जन प्रज्ञा पायें।
स्पष्ट दूरगामी फिर प्रज्ञा हो जाती जब,
शाश्वत नियम जान लेते,
लौटेंगे उद्‌गम पर सब,
जीवन लयबद्ध, प्रबुद्ध सहज ही,
वे पा लेते तब।

६६
सौम्य नमितता का प्रभाव

समुद की ओर दौड़ते हैं क्यों नद, नाले, झरने?
बना दिया उसको विशाल नीचे रहने ने,
स्वामी बनाया उसे सिर्फ झुकने की कला ने।
विश्वास अगर लोगों का चाहो,
बोली उनकी सी ही बोलो,
लोगों का प्रमुख बनना चाहो,
तो खास न बन पीछे चल लो।
तब लोग न बोझ अनुभव करते,
हानि ना पहुंचा कर उनको,
सर-आंखों पर रख लेते,
फिर सहज भाव से उनको प्रमुख बना देते।
जनता का हित ही साधेगा,
विश्वास अटल उनको होता,
जब वे ना बनते प्रतियोगी,
संसार न प्रतियोगी बनता।

६७

तीन खज़ाने

ताओ को जग कहता महान्,
है दूर पहुंच के बतलाता,
वह महानता के कारण ऐसा लगता।
यदि पा लेना हो आसान,
उसका महत्व खो जाता।
तीन खज़ाने अब बतलाता,
जो उन्हें सहेजे, ताओ मिलन में,
उसे सहारा मिल जाता।
पहला है- प्रेम भाव होना,
दूजा है- मिताचार रखना,
तीजा है- प्रयत्न प्रथम बनने का कभी न करना।
प्रेम से जन बन जाता निर्भय,
मिताचार करे शक्ति संचय,
तीजे से द्वार न रूद्ध होयँ,
निज प्रतिभा विकसित होती,
तब प्रज्ञा प्रौढ़ कहाती।
जो यह सोचे-
प्रेम-करूणा बिन निर्भय हो जाऊंगा,
मिताचार बिन शक्ति-संचय भी कर लूंगा,
करूं कशमकश तब ही आगे रह पाऊंगा,
वह ना ही विकसित होता,
ना महान बन पाता।
जो विपरीत स्थिति में भी,
प्रेमादि से जीये जाता,
ताओ उसे सुरक्षित रखता,

बन जाती फिर, प्रकृति सहायक,
देकर उसको वत्सलता।

६८

निर्विरोध की शक्ति

योग्य सैनिक ना हिंसक होता,
योग्य लड़ाका क्रोध न करता,
नेता योग्य न बदला लेता,
योग्य नियोजक नम्र ही रहता।
यह कहलाती निर्विरोध की शक्ति,
यही कहाती जन-संयोजन शक्ति,
परिवेश सदा आनंदित रखती।
आदिकाल से चली आ रही जिसकी महत्ता,
वह है यही- महायुति,
अस्तित्व और प्रकृति की,
संसार और स्वर्ग की।

६९

उग्रता को नकारना

रणनीतिज्ञ का है यह सूत्र-
आक्रामक ना बनूं कभी,
होऊं आक्रान्त तो रक्षा कर लूं,
एक ईंच भी ना बढ़ आगे,
क़दम एक पीछे हट जाऊं।
यह होता है-
स्थिर रह कर आगे बढ़ना,
दु:साहस से काम न लेना,
अस्त्र बिना भी सज्जित रहना।
शत्रु-शक्ति के अवमूल्यन से
बड़ा अनर्थ न कोई,
नष्ट खज़ाने सारे वह कर सकता,
जब हों समक्ष शक्तियॉ विरोधी,
सदाशयी जयमाला धारण करता।

७०
ज्ञानी के लक्षण

समझने में हैं सुगम शब्द ये मेरे,
हैं आसान साधने में,
फिर भी ना उनको कोई जाने,
असमर्थ रहे व्यवहृत करने में।
है आदि काल ही स्रोत मेरे शब्दों का,
मेरे कार्यों में वही व्यवस्था लाता,
जब तक ना जाने यह कोई,
वह कैसे मुझे समझ पाता।
नासमझों को आदर मिल जाता,पर
जो समझे मुझे, अनादर ही वह पाता।
तब ही ज्ञानी सामान्य रहें,
सादे-मोटे कपड़े पहनें,
मणि-माणिक हिय में ही, रख लें।

७१

अज्ञान से मुक्ति

जो जाने वह चुप ही रह जाता,
जो ना जाने, वह बोले जाता।
है सर्वश्रेष्ठ यह ज्ञान कि
'मैं ना जानूं,'
है अज्ञानी जो ना जाने,
पर कहे कि 'जानूं'।
यदि जन जाने बीमारी को बीमारी,
हो जावे उससे मुक्त, बीमारी हारी।
मुक्त होयं बीमारी से वे ही व्यक्ति,
जिनने जाना-बीमारी ने हर ली शक्ति,
यह ही है राह-बीमारी से मुक्ति की।

७२

सही परिपेक्ष्य

जन, ना हों भयभीत जहॉ शासन से,
वहॉ ही सुशासन विस्तारित होते,
अनादर जहँ लोगों के घर,बच्चे ना पाते,
अवमूल्यन जीवन स्तर का कोई न करते,
सामान्य व्यक्ति भी तिरस्कार नहीं पाते,
तब ही जन, शासन का तिरस्कार ना करते।
इसलिये जानकर भी अपने को बुधजन,
जनता में न खुद को जतलाते,
होता विश्वास, प्रेम भी स्व अंतस पर,
पर निज को वे अमूल्य नहीं दर्शाते,क्योंकि
सूक्ष्म रूप में शक्ति प्रदर्शन ही होता वह।
जब वे अपने को खास न मानें,
तब ही कुलीन कहलाते,
औ जनाधार पा जाते।

७३

प्रकृति की रीति

जो शक्तिवान करते दु:साहस बच ना पाते,
जो न करें कुछ भी साहस, वे क्यों बच जाते?
इन दोनों के हानि-लाभ कैसे, कोई आंके?
क्यों करती है प्रकृति ऐसा,
यह जान सका कब, कौन?
बुध भी न दे सकें उत्तर,
केवल रह जायें मौन।
नियम प्रकृति का है ऐसा-
ताओ में रहनेवाले,
बिन संघर्ष, सदा जीतें,
बिन बोले, उत्तर पायें,
बिन मांगे, सब पा जायें,
करते न त्वरा पर,
कार्यों में कभी देर ना पावें।
यह प्रकृति जाल है सतत,
अजर और विस्तृत,
लगती है जाली मोटी पर,
कुछ ना होवे नि:सृत।

७४

दु:साहस का परिणाम

भयभीत न हों यदि जन मृत्यु से,
करें न वे दु:साहस यह कैसे समझायें?
यदि हो मृत्यु का भय लोगों को, तो
विकास पथ पर चलना कैसे सिखलायें?
जब जन्म मृत्यु की निर्णायक,
बस एक प्रकृति होती,
तो करें न कोशिश हम उसके,
निर्णायक बनने की।
बनना चाहे उसका प्रतिरूप कोई तो ऐसा होता,
जैसे न सीखकर कार्य कोई,
बढ़ई की कुल्हाड़ी ले लेता,
मान स्वयं को सक्षम,
खुद अपने ही हाथों,
घायल अपने को कर लेता।

७५

अर्थोपार्जन की सुविधा

क्यों हैं भूखे लोग?
क्योंकि शासक ले लेते बहु कर,
खाने को कुछ ना बचता।
क्यों बने अराजक लोग?
कि शासक हस्तक्षेप कर करके,
कुछ भी न कमाने देता।
जब जीना ही दुश्वार हुआ,
मृत्यु से डरना कैसा?
जीवन साधन ना जुटा सकें,
प्राण रख कर होगा क्या?
यदि शासक जन-जीवन का आदर कर लें
तो लोग भी प्राणों का आदर कर लेते,
राष्ट्र महान बन जाते।

७६

लचीलेपन की शक्ति

व्यक्ति जन्म से नम्य और कोमल होता,
मर जाने पर सख्त,कठोर वही बनता।
कोमल, नम्य रहें पौधे,
जब तक हैं जीवन्त,
मरने पर वे सूखें,
बिखरें उनके सारे कण।
दुर्नम्य, सख्त मृत्यु समान,
प्रकृति यह सिद्ध करे,
मृदु,नम्य जीवन के साथी,
प्रकृति पुकार कहे।
इसलिये न हो यदि कोई लचीला,
तो जीवन से हारे,
जैसे वृक्ष कठोर होय तो
सब कोई उसको काटे,
छोड़े जो दुर्नम्य नीति
तो शिखरों को छू ले।

७७

संतुलन

प्रकृति का ताओ मार्ग,
है धनुष खींचने जैसा,
जितना नीचे शिखर उतरता,
तल ऊपर जाता,
यदि बढ़ायें चौड़ाई, लम्बापन कम हो जाता।
ऐसे ही,होती जहॉ अति, प्रकृति वहॉ से लेती,
और जहॉ हो कमी, वहॉ वह उसको दे देती,
पर, मानव ना अपनाता है यह समता रीति।
वह तो उनसे लेता, जिनके पास अल्प ही होता,
पहले से जहँ भंडार भरे, वहॉ और दे देता,
ऐसे पद, पैसे का संतुलन, असंतुलित कर देता।
रंक-राव के मध्य की खाई पाट सके वह कौन?
जो मध्यस्थ बैठ सकता
ताओ में, होकर मौन।
केवल बुध व्यक्ति के मन में,
स्वार्थ भाव ना होता,
धन, पद, मान की चाह कभी,
कर्म कारण ना बनता,
कार्यों, भावों में लक्ष्य सदा,
समस्तर ही होता, उसका।

७८

योग्यता का आधार

जल सम कोमल औ दुर्बल ना कोई जग में,
फिर भी कठोर में करे छिद्र, है इतनी शक्ति उसमें।
दुर्बल जीते शक्तिवान को,
मृदु कठोर को विजित करे,
जग में सब ही जानें इसको,
पर कोई, व्यवहृत न करे।
जो जनता के आरोपों को,
झुक सिर-माथे लेता,
वही राज्य का संरक्षक
बनने के योग्य होता।
जग के बिगड़े कार्य सुधारे
आगे बढ़,जो उत्तरदायी,
तब ही सच्चा जगनायक,
बन सकता है एक वही।
मेरे ये सीधे, सरल शब्द,
सत्य होकर भी जग को,
बस उलटबॉसी ही लगते।

७९

बैर-दोस्ती

मन से न हटा हो वैर-भाव,
स्थितिवश दोस्ती कर ली हो,
अंतस में तब कड़ुवापन रह ही जाये,
संतोष-प्रदायक यह ना होये।
पर,सुधी मानता अपने को भी दोषी,
केवल दूजे को गल़त नहीं ठहराये,
करे प्रयत्न नित समझौते का,
मन में तोष, प्रेम लाये।
भरा रहे मैत्री औ प्रेम से पूर्ण सतत ही,
हंता का स्वर उठ ना पाये,
दूजा न हीन समझे निज को,
वैर-भाव से वह भी मुक्ति पाये।

८०
आदर्श राज्य

हो छोटा सा राज्य, थोड़े से लोग,
जो अपनी वफ़ादारी औ कर्मठता से,
अन्न, वस्तुऐं उपजायें दसगुनी कि
अपना देश, स्व-निर्भर रह आये।
हों वहं, नाव, गाड़ियें बहुत किंतु
यात्री-जन बहुत अल्प ही हों,
अति दूर भ्रमण वांछा ना हो,
निज जीवन मूल्य समझते हों।
यादी के लिये वे गांठें बांधें,
निज के भोजन में रस ले लें,
सरल,सुंदर गृह-संस्कृति हो,
प्रेम-मैत्री से रह लेवें।
हों कवच, शस्त्र भंडार भरे,
अवसर न प्रदर्शन का आये,
सोचें ना निज देश को हम विस्तृत कर लें।
देश-सीमा पर नज़र रखें, चौकन्ने रह लें,
उनके मुर्गों की बॉग सुनें,
कुत्तों का भौंकना भी सुन लें,
पर, शांति-खुशी से रहें और रहने दें।
बचपन से बुढ़ापे तक हो ऐसी संतुष्टि,
सोचें ना छोड़ स्वदेश गैर के घर जायें,
अपने ही देश औ संस्कृति में,
तन-मन-आत्मानंद पा लें।

८१

सज्जन की रीति

कर्ण मधुर ना होता सत्य,
हो कर्ण –मधुर तो वो ना सत्य।
करें विवाद न सज्जन व्यक्ति,
असज्जन ही रहे विवादी।
बुद्धिमान अपने को ना जतलाता,
जो पीटे अपना ढ़ोल, न बुध हो पाता।
बुध-जन,कभी न कुछ भी संग्रह करते,
जो भी पाते,परहित में व्यय कर देते,
देकर सब कुछ दान,समृद्ध हो जाते।
प्रकृति का ताओ-
मदद करे पर बिन जतलाये,
कर्म करे बिन स्पर्धा के,
जीवन जीये बिन हंता के,
भरा रहे नित प्रेम, शांति से,
सज्जन की रीति कहें इसे।

कवर पेज का पिछला हिस्सा

समकालीन होते हुए भी, लाओत्सु का जन्म, बुद्ध के पहले ही माना जाता है। अत: लगता है, बुद्ध के मज्झिम निकाय की रूपरेखा यहॉ से ही आई होगी। यिंग और येन, कठोर और कोमल कासंतुलन ही लाओत्सु का लक्ष्य जान पड़ता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि वे राजनीति में थे और ये सूत्र भी राजकाज के लिये ही लिखे गये थे। अत: आत्मिक व्यक्ति को दृढ़ता के लिये, कठोर का थोड़ा समावेश करना ही होगा। कोमल,नमित के बारे में कहते हुए उन्होंने जल को प्रमुखता दी है। इन सबको ध्यान में रखते हुए ही,मुखपृष्ठ की रचना की गई है।